प्रवचन-३९, गाथा-४१, श्लोक ५८-५९, गुरुवार, श्रावण शुक्ला ४, दिनांक १४-०८-१९८०

नियमसार गाथा ४१।

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।

(हरिगीत)

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

गाथा सूक्ष्म हैं। शुद्धभाव का अधिकार है। शुद्धभाव, जो सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाल, उसमें ये चार भाव भी नहीं हैं। आहाहा! वस्तु जो वस्तु है, वह पंचम पारिणामिक ज्ञायकभाव स्वरूप। उसमें उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव का भी अन्तर में अभाव है। आहाहा! यह कहते हैं।

चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा... आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन, वह क्षायिकभाव। उन्हें यहाँ विभाव-स्वभाव (कहा है)। आहाहा! विभाव क्यों? (इसलिए) कि एक समय की पर्याय है, वह विशेष भाव है; इसलिए उसे विभाव कहा है। उससे भी भगवान तो भिन्न है। सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन का विषय पंचम पारिणामिक स्वभावभाव, ऐसी वस्तु में **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** चार विभावस्वभाव। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव तो विभाव हैं, परन्तु यहाँ तो उपशम क्षयोपमशम और क्षायिक को भी विभाव कहा है। वि-भाव अर्थात् विशेष भाव। आहाहा! उस विशेष भाव का भी त्रिकाली जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में इन चार भाव का अभाव है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो वैराग्य की अकेली बातें करे, परन्तु वैराग्य-वैराग्य कब होता है? आहाहा! एक स्वरूप एक समय में शुद्ध घन आनन्दकन्द प्रभु शुद्धभाव में चार भाव का अभाव है, ऐसी दृष्टि हो तब सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन होता है, तब पुण्य-पाप के उदयभाव से विरक्त (होता है)। मुझमें तो नहीं। यह तो पहले आया। परन्तु भाव से भी विरक्त हुआ। वर्तमान दशा नहीं। क्या कहा? उदयभाव जो है... उसमें आयेगा। राग-द्वेष आदि चार गति, वह आत्मा में है नहीं। यह एक बात। परन्तु जो आत्मा में नहीं ऐसी चीज़

की दृष्टि हुई, तब पर्याय में भी पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तपना होता है। आहाहा! इसका नाम वैराग्य कहते हैं। व्याख्या बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

ऐसा वैराग्य (करे कि) यह स्त्री, कुटुम्ब ऐसा है और वैसा है-वह तो श्मशान वैराग्य है। आहाहा! श्मशान वैराग्य अर्थात् समझते हो? यह मुर्दा मर जाये तब.. यहाँ तो प्रभु! एक समय में वर्तमान पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकभाव, जिसमें परमपारिणामिकभाव का भेद भी जिसमें नहीं। भव्य और अभव्य पंचम पारिणामिक का भाव है, वह भी जिसमें नहीं। आहाहा! जिसमें भव्य और अभव्य की योग्यता, ऐसा भी अन्तर में नहीं। आहाहा!

चार विभावस्वभावों... आहाहा! उनके **स्वरूपकथन द्वारा...** कहना क्या है? हेतु क्या है? उसका तात्पर्य क्या है? कि **पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** आहाहा! जिसमें—भगवान आत्मा में शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार कर्म जड़ आदि पदार्थ को तो त्रिकाल अभाव है, परन्तु यहाँ तो वर्तमान क्षायिक आदि भाव प्रगट हुए हों... आहाहा! उनका भी द्रव्यस्वभाव में अभाव है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय प्रभु आत्मा है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, परन्तु उसका विषय जो पंचम स्वभावभाव ध्रुव है, उसमें तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का भी अभाव है। अरे! क्षायिकभाव का भी अभाव है। आहाहा! अरे रे!

इन **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** बहुत सूक्ष्म गाथा है, भाई! **पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** अब चार भाव की व्याख्या (करते हैं)। **कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है।** नीचे अर्थ है। **कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में;...** कर्म का क्षय तो कर्म के कारण से होता है। यह तो सबेरे आ गया। पर निरपेक्ष अपनी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! वह कर्म का क्षय हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! मात्र निमित्त का कथन है, झूठे व्यवहारनय का कथन है। कलश-टीका में लिया है। यह कलश-टीका है न? उसमें झूठा व्यवहारनय-ऐसा शब्द लिया है। आहाहा! पूरी बात ही गजब है, बापू!

कहते हैं कि **कर्मों के क्षय से...** सबेरे तो कहा था कि अपनी पर्याय में पर का निमित्त और निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं है। स्वद्रव्य की पर्याय उत्पन्न होती है, वह द्रव्य के अवलम्बन से होती है। उसमें परचीज़ की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! परन्तु उस पर की अपेक्षा में भी यहाँ क्षायिकभाव की भी उसमें अपेक्षा नहीं और क्षायिकभाव के आश्रय से पंचमभाव की प्राप्ति होती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अरे रे! यहाँ तो अभी

दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रतिक्रमण, पूजा करोगे तो आगे बढ़ा जायेगा—यह तो बहुत विपरीतदृष्टि है। अरे रे! समझ में आया?

यह उदयभाव है, वह तो विकृत भाव है। उसका तो अपने में अभाव ही है, परन्तु यहाँ तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो निर्मल परिणाम है, जो मोक्ष का मार्ग है और मोक्ष की पर्याय है। मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, वह उपशम, क्षयोपशम और मोक्ष की पर्याय है, वह क्षायिक। मोक्ष के मार्ग की पर्याय और क्षायिक मोक्ष की पर्याय का आत्मा में अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुद्‌गल में सद्‌भाव है? आत्मा में नहीं तो पुद्‌गल में सद्‌भाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात यहाँ नहीं है। पर की अपेक्षा रखे बिना पर्याय है तो स्वयं में, परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय, पर्याय में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, पर्याय में है। पर्याय, पर्याय में तो है, परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय क्या है, वह बताना है। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है... आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान। उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय ध्रुव त्रिकाल पंचम स्वभावभाव जो है, उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का भी अभाव है और क्षायिकभाव का भी उसमें अभाव है। आहाहा! अन्दर है? लोगों ने सत्य सुना नहीं। यह क्रिया करो, व्रत करो, तप करो, बाह्य त्याग करो... आहाहा! मैं पर का त्याग करता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है क्योंकि पर का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति। भगवान आत्मा में एक गुण ऐसा है कि त्याग-उपादानशून्यत्व (शक्ति है)। पर का ग्रहण और पर के त्यागरहित अपना स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! उसके बदले ऐसी दृष्टि हो गयी कि बाहर का थोड़ा त्याग करे तो धर्म हो। स्त्री छोड़े, परिवार छोड़े, ब्रह्मचर्य पाले। हो गया धर्म। धूल में भी नहीं।

मुमुक्षु : प्रतिमा तो लेता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रतिमा आदि विकल्प है, पुण्य-बन्ध है और माने धर्म, वह तो मिथ्यात्व की पुष्टि है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप है। महापाप मिथ्यात्व है। यह प्रतिमा का विकल्प है, वह भी अपने स्वरूप में नहीं है और प्रतिमा का... तो सबेरे आ गया कि राग जो प्रतिमा का विकल्प राग है, इस सम्यग्दर्शन की पर्याय में उसकी अपेक्षा ही नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट करने में स्वद्रव्य की अपेक्षा है। उस राग की अपेक्षा नहीं। राग के अभाव की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा जो भाव में से प्रगट हुआ, वह भाव अन्दर शुद्धभाव-शुद्ध (में से प्रगट हुआ)। उस पर्याय की बात नहीं। यह शुद्धभाव जो ऊपर अधिकार लिया, वह त्रिकाली चैतन्य प्रभु परमपारिणामिक स्वभाव पंचम स्वभावभाव पारिणामिकभाव को यहाँ शुद्धभाव कहने में आया है। ऐसा पंचम स्वभाव ऐसा शुद्धभाव, उसमें इन चार विभावस्वभावों (का अभाव है)। आहाहा!

राग-द्वेष को विभाव कहे, उपशम को विभाव कहे, क्षयोपशम को विभाव कहे, यहाँ तो क्षायिक को विभाव कहा है। आहाहा! विभाव का अर्थ विशेष अवस्था है। विशेष अवस्था द्रव्य में-सामान्य में नहीं है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन—आत्मा का अनुभव, वह स्वद्रव्य की दृष्टि से और स्वद्रव्य के स्वीकार से होता है। वह कोई वर्तमान राग से या उदय, उपशम से उत्पन्न हो, समकित होता है (ऐसा नहीं है)। उसके आश्रय से भी शुद्धि की वृद्धि नहीं होती। आहाहा! अरे! क्षायिक समकित हुआ हो तो उसके आश्रय से भी शुद्धि की वृद्धि नहीं होती। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि तो त्रिकाली पंचमभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु के अवलम्बन से और उसके आश्रय से शुद्धि की उत्पत्ति और शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता (होती है)। शुद्धि की उत्पत्ति, वह संवर-निर्जरा है। समझ में आया? संवर, वह शुद्धि की उत्पत्ति; निर्जरा, शुद्धि की वृद्धि; मोक्ष, वह शुद्धि की पूर्णता, इन तीनों का द्रव्यस्वभाव में अभाव है। अरर! अब इसमें तो अभी स्त्री मेरी, पैसा मेरा, परिवार मेरा, कहीं धूल रह गयी बाहर। आहाहा! वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

मुमुक्षु : फँस गये, उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : फँस गये, वह तो मान्यता में फँसे हैं। मान्यता में सब फँसे हैं। जो वस्तु इसमें नहीं... यहाँ तो (कहते हैं) क्षायिकभाव इसमें नहीं। आहाहा! वह (स्त्री, पुत्र) तो परद्रव्य है। यह तो अपनी जो पर्याय क्षायिक... आहाहा! वह भी अपने स्वभाव

में नहीं है। जहाँ दृष्टि का विषय बनाना है, वहाँ तो क्षायिकभाव भी नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु! कठिन बात है, भाई! आहाहा! बस, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा.. सम्यग्दर्शन सराग है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। वह भी वीतरागी पर्याय क्षायिकभाव से उत्पन्न हुई, तो भी वह वीतरागी पर्याय, त्रिकाली वीतरागी स्वभाव में नहीं है। आहाहा! कभी सुना नहीं, सेठ! सेठ को प्रेम है। छोड़कर आये हैं। बात बहुत कठिन है, बापू! प्रभु! क्या कहें? आहाहा!

यहाँ तो चार विभावस्वभाव में **कर्मों के क्षय से...** अब यहाँ कहते हैं कि तुम तो सबेरे कहते थे कि अपनी पर्याय में, किसी भी द्रव्य की पर्याय में पर की पर्याय के अभाव की ओर भाव की अपेक्षा नहीं है। यहाँ तो कर्म के क्षय की अपेक्षा है। यह तो बताना है कि अन्दर जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह कर्म का क्षय-नाश होकर, उस कर्म का क्षय होकर अकर्म पर्याय होती है। कर्म का क्षय होने पर केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा? केवलज्ञानावरणीय एक जड़ प्रकृति है, उसका नाश... नाश का अर्थ? वह कर्म की पर्याय है, तो कर्म की पर्याय का व्यय होता है और अकर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, उसका नाम चार घातिकर्म का नाश कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग।

यहाँ तो अभी दया-व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, प्रतिमा ले लो.. मूल चीज़ का.. आहाहा! ईकाई का ठिकाना नहीं और शून्य। कोरे कागज पर शून्य लाख, करोड़ शून्य चढ़ावे, उनकी संख्या में गिनती नहीं होती। कोरे कागज पर लाख शून्य करे, वह एक कहलायेगा? वे एक के बिना के शून्य हैं। इसी प्रकार अपना शुद्ध चैतन्य प्रभु, जिसमें चार भाव का भी अभाव है, उसका अनुभव होने पर जो सम्यग्दर्शन होता है, उसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

समयसार, ७२ गाथा में तो आचार्यों ने भगवान कहकर बुलाया है। प्रभु! तेरी पर्याय में जो शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पूजा के भाव आते हैं, वे अशुचि हैं, मैल हैं। आहाहा! भगवान अन्दर में अति निर्मलानन्द है। भगवान आत्मा कहकर बुलाया है। आहाहा!

एक बार तो नहीं कहा था? नाटक में भी ऐसा कहा था। (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष में। नाटक ऐसा था। अभी तो नाटक में भी बदलाव हो गया। लौकिक नैतिक जीवन (रहा नहीं)। आहाहा! नाटक में ऐसा आया था। पुत्र को (माता) झुला रही थी। बड़ोदरा

में माल लेने गये थे, (वहाँ) रात्रि में नाटक देखने गये थे। बेटा! निर्विकल्पो, यह अपने समयसार में है। समयसार है न? जयसेनाचार्य की टीका। परमात्म प्रकाश में (भी) है.. जयसेनाचार्य की टीका में है कि बन्ध के नाश का उपाय क्या – ऐसा पाठ संस्कृत में है। समझ में आया? समयसार भी नहीं? समयसार भी नहीं। है? कहाँ है? समयसार। मिला? बन्ध अधिकार है न? उसमें आया है। पुस्तक में चिह्न किये हैं। आया देखो!

'**बंधो भणितः स च हेयस्याशेषस्य नरकादिदुःखस्य कारणत्वद्धेयः। तस्य बंधस्य विनाशार्थं**' उस बंध के नाश के लिये। संस्कृत है, विशेष भावना यह। '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं**' तीन जगह है। यहाँ बन्ध अधिकार में है, सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में है। सम्यग्दृष्टि की कैसी भावना है? आहाहा! **सहज**–स्वाभाविक त्रिकाल, **शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव।** पर्याय भी नहीं। आहाहा! बारह भावना में भी यह भावना करना। आहाहा! सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव। भेद भी नहीं। आहाहा! जिसमें क्षायिक, उपशम आदि की पर्याय भी नहीं। एक कहा न? एक स्वभाव। '**निर्विकल्पोऽहं**' यह तो नाटक में भी कहा था। चार बोल याद रहे। पुस्तक भी ली थी, परन्तु बहुत वर्ष हो गये (संवत्) १९६४–६५। ७० वर्ष पहले की बात है। तुम्हारे यहाँ क्या कहते हैं? ७०। दुकान का माल लेने बड़ोदरा गये थे, तो रात्रि को नाटक देखने गये थे। वहाँ एक स्त्री यह बोलती थी। निर्विकल्पो बेटा! आहाहा! यहाँ यह शब्द पड़ा है। तब तो यह कहाँ देखा था? यह (समयसार) तो (संवत्) १९७८ में..

'**निर्विकल्पोऽहं**' सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को '**निर्विकल्पोऽहं**' (ऐसा भाता है)। मैं तो अभेद हूँ। विकल्प भी नहीं, भेद नहीं। आहाहा! '**उदासीनोऽहं**' '**उदासीनोऽहं**' मेरा आसन तो पर्याय और राग से भिन्न द्रव्य में है। पर से उदासीन हूँ, पर्याय से उदासीन हूँ। आहाहा! समझ में आया? मेरा जो द्रव्यस्वभाव है, वह उदासीन–उदास आसन। पर्याय में उससे उदासीन होकर द्रव्य में आसन, वह मेरा आसन है। सूक्ष्म बात है, भगवान! है?

'**निरंजननिजशुद्धात्म**' निरंजन–मुझमें अंजन नहीं। '**निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक**' निश्चयरत्नत्रयस्वरूप। '**निर्विकल्पसमाधिसंजात**' ऐसी निर्विकल्प समाधि से भगवान आत्मा के दर्शन होते हैं। सम्यग्दर्शन उससे होता है। आहाहा! '**वीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन**' आहाहा! ये दया, दान, व्रत, भक्ति से आत्मा का पता नहीं लगता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं '**वीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूति**' -सुख का आनन्द का अनुभव। वह '**मात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्य:**' में तो स्वसंवेदन ज्ञान से स्वसंवेद्य हूँ। उसके स्व-अपना अपने से अनुभव हो, उस स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से मैं अनुभवगम्य हूँ। उसमें मैं गम्य हूँ; दूसरे प्रकार से गम्य नहीं होता। आहाहा! संस्कृत है। यहाँ तो हजारों श्लोक-करोड़ों श्लोक पहले देखे हैं। दुकान में भी सैकड़ों देखे थे। सुनने से जो ज्ञान होता है, उससे भी मैं गम्य नहीं होता। आहाहा! प्रभु! तेरी महिमा तो देख, तेरी महिमा तो देख। आहाहा! वह राग से गम्य नहीं, पर्याय से गम्य नहीं। पर्याय के लक्ष्य से और आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! दो जगह है। जयसेनाचार्य की टीका - संस्कृत टीका है।

'**संवेद्यो गम्य: प्राप्य:**' उस स्वसंवेदन से मैं प्राप्य हूँ। तीन काल, तीन लोक में दूसरे किसी उपाय से मैं प्राप्य नहीं हूँ। आहाहा! '**भरितावस्थोऽहं**' क्या कहते हैं? भरित अवस्था शब्द पड़ा है। वहाँ अवस्था पर्याय नहीं लेना। भरित अवस्थ-निश्चय से भरा हुआ—पूर्ण अवस्था से भरा हुआ मैं हूँ। द्रव्यस्वभाव। शब्द ऐसा है। '**भरितावस्थोऽहं**' भरित अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना। अवस्थ - निश्चय भरित पूर्ण भरा हुआ, वह मैं हूँ। आहाहा! तीन जगह यह टीका आती है। हमने तो बहुत बार देखा है न! (संवत्) १९७८ के वर्ष में समयसार मिला। १९८२ में तो मोक्षमार्गप्रकाशक (मिला) सम्प्रदाय में व्याख्यान पढ़ते थे। लोग सुनते थे। हमारी प्रसिद्धि बहुत थी न! सब सुनते थे। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि श्वेताम्बर में.. सत्य है, उसकी बात रखें। हजारों लोग (आते थे)। आहाहा!

राजकोट में तीन-तीन हजार लोग। (संवत्) १९८९ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ११ और ३५ = ४६ वर्ष पहले व्याख्यान पढ़ते थे। राजकोट में दो-ढाई हजार स्थानकवासी के घर की बस्ती है। उसमें हम व्याख्यान पढ़ते थे, तब तीन-तीन हजार लोग आते थे। १९८९ के वर्ष। एक घण्टे, डेढ़ घण्टे तो मोटर और गाड़ी के ठाठ जम जाये। राय.. पढ़ते थे। परदेसी राजा का.. अज्ञानी। फिर आत्मज्ञान हुआ उसकी बात बहुत लम्बी है। तीन हजार लोग, दो हजार घर। बहुत लोग। हम तो वहाँ भी यह कहते थे। परन्तु थोड़ा.. श्वेताम्बर के शास्त्र कल्पित हैं ऐसा।

यहाँ (कहते हैं) '**भरितावस्थोऽहं**' राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पंचेन्द्रिय विषय के व्यापार से मैं रहित हूँ। '**मनोवचनकायव्यापार.... भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-ख्याति-पूजा-लाभ**' इनसे मैं रहित हूँ। '**दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूप**' देखे हुए,

सुने हुए, अनुभव किये हुए भोगों की आकांक्षारूप। '**निदानमायामिथ्याशल्यत्रयादि-सर्वविभावपरिणामरहितः शून्योऽहं**' आहाहा! '**जगत्रये**' तीन लोक में मैं ऐसा हूँ। आहाहा! जहाँ-जहाँ मैं हूँ '**जगत्रये**' शब्द पड़ा है। तीन लोक में और '**कालत्रये**' तीन काल में। तीन लोक में और तीन काल में। '**मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन**' मैं ऐसा हूँ। '**तथा सर्वे जीवाः इति**' सर्व जीव ऐसे हैं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि अपनी ऐसी भावना करता है, इस समय भी सर्व जीव ऐसे हैं, ऐसा जानता है। भगवान सब आत्मा (ऐसे हैं) पाठ है, देखो! '**सर्वे जीवाः इति निरंतर भावना कर्तव्या।**' तो फिर खाना, पीना कब? आहाहा! निरन्तर भावना (भाना)। समयसार की जयसेनाचार्य की टीका है। लाल कवरवाला। जयसेनाचार्य की टीकावाला। जयसेनाचार्य की टीका में है। दो जगह है। तीन काल, तीन लोक में मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदन से रहित मैं तो त्रिकाल शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ। आहाहा!

यह यहाँ कहा। **कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह...** भाव है तो सही। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि क्षय से होते अवश्य हैं, परन्तु क्षय की अपेक्षा का निमित्त से कथन है। बाकी उत्पन्न होने में किसी पर की अपेक्षा नहीं है परन्तु लोगों को संक्षिप्त में समझाने के लिये कहते हैं कि कर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो वह... आहाहा! सकल परिणाम से रहित हो, वह पारिणामिकभाव मैं हूँ। आहाहा! अभी पारिणामिकभाव सुना न हो। यहाँ पारिणामिकभाव लेना है। बाकी तो पारिणामिकभाव पाँचों द्रव्य में है। पारिणामिकभाव आत्मा के अतिरिक्त पाँचों द्रव्य में (भी) है, परन्तु यहाँ पारिणामिकभाव का अर्थ करके ज्ञायकभाव जो छठी गाथा में लिया। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक अप्रमत्त, ये दोनों मैं नहीं। आहाहा! प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था मुझमें नहीं। इन प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्थाओं से भिन्न मेरी चीज़ ज्ञायकभाव है। जो यहाँ पारिणामिक कहा वह (है)। आहाहा! ऐसी बात! लोगों को मूल चीज़ के ऊपर लक्ष्य ही नहीं गया। ऊपर-ऊपर से सब (किया)। आहाहा!

(सकल कर्मोपाधि से विमुक्त), ऐसा परिणाम से जो भाव हो... चार भाव से रहित **जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** पारिणामिक ऐसा शब्द लिया है। संस्कृत में जयसेनाचार्य ने परिणाम लिखा है। परिणाम। पंचास्तिकाय की ५६ गाथा में चार भाव का अर्थ करते हुए, पारिणामिक का परिणाम इतना शब्द लिया है। परिणाम इतना लिया है। उस परिणाम का अर्थ यह - पारिणामिकभाव। सहजस्वभाव। आहाहा! जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं, जिसमें आदि-अन्तवाली पर्याय का अभाव है। केवलज्ञान भी सादि-अनन्त है। आहाहा! क्षायिक समकित भी सादि-अनन्त है। उस पर्याय का भी त्रिकाल में अभाव है। आहाहा! गजब की बात है। अरे! दुनिया कहाँ पड़ी है और प्रभु का मार्ग कहाँ है। आहाहा! और जिसमें भव का अन्त न आवे, प्रभु! उसमें भव मिले, वह कहाँ मिलेगा? कहाँ जायेगा? चौरासी लाख योनि पड़ी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तेरा स्वभाव ऐसा है कि जिसमें इन चार भावों का भी अभाव है। है? **इन पाँच भावों में,...** अब स्पष्टीकरण करते हैं। **औपशमिकभाव के दो भेद हैं, क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं। अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र।** आहाहा! प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, वह उपशम। प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, वह उपशम। पश्चात् क्षयोपशम होकर क्षायिक हो जाता है। समझ में आया? परन्तु कहते हैं कि उपशम समकित जो है, वह उपशमभाव है; वह मेरे त्रिकाल में नहीं है। जिस उपशमभाव से पता लगा.. उपशमभाव से, भगवान आत्मा अन्दर कैसा है, उसका पता लगा, उस उपशमभाव से पता लगा, वह इसकी चीज़ में नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

(समयसार) ७२ गाथा में भगवानरूप से बुलाया है न? तीन बार भगवान कहा है। प्रभु! भगवन्त! पुण्य-पाप मलिन भाव हैं, उनसे तू भिन्न निर्मलानन्द भगवान है न? प्रभु तेरी दृष्टि कहाँ है? आहाहा! शुभ-अशुभभाव, प्रभु! जड़ है न? ऐसा ७२ गाथा में कहा है। जड़ है न? तू तो चैतन्य है न, नाथ! उनसे भिन्न तेरी चीज़ अन्दर है। भगवान! ऐसा कहा है। तीन बार भगवान कहा है। अशुचि से भिन्न भगवान; जड़ से भिन्न भगवान और पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप हैं, उनसे रहित भगवान आत्मा है, ऐसा लिया है। समझ में आया?

समयसार के व्याख्यान की शुरुआत सम्प्रदाय में की थी। (संवत्) १९९० का

चातुर्मास राजकोट में था न ? पहले १९८९ के वर्ष। तीन-तीन हजार। क्या कहलाता है वह ? सदर। सदर में चातुर्मास था। १९९० के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? १० और ३५ = ४५। वहाँ यह समयसार दोपहर को व्याख्यान में पढ़ा था। हमारे प्रति लोगों को प्रेम बहुत था न! छोटी उम्र, दीक्षा ली, शरीर में भी सुन्दरता दिखाई दे। यह तो ९० वर्ष हुए। आहाहा! दीक्षा ली, तब साढ़े तेईस वर्ष की उम्र थी। हमें देखकर कहे, यह दीक्षा लेते हैं, अर र! परीषह कैसे सहन करेंगे ? राजकुमार जैसा शरीर। एकान्त में कहते थे। हमारे तो भाई दीक्षा लेना है। वहाँ समयसार सम्प्रदाय में ही पढ़ा था। (संवत्) १९९० का वर्ष था। रामजीभाई थे। फिर जामनगर में पढ़ा था। यह सत्य बात। ९९ गाथा तक पहले सम्प्रदाय में पढ़ा, स्थानकवासी सम्प्रदाय के उपाश्रय में। और फिर १०० गाथा से जामनगर में पढ़ा।

जामनगर में एक छह लाख का सोलेरियम है। उसके डॉक्टर थे, वे सुनने आते थे। प्राणभाई! मासिक ढाई हजार का वेतन था। उस समय, हों! मासिक ढाई हजार का वेतन। सुनने आते थे। (एक दिन कहा) महाराज! यहाँ पधारना न, सोलेरियम है, छह लाख रुपये की एक मशीन। वह पूरी मशीन को चलावे। उसके लड़के को फोड़ा हुआ न ? घूमड़ा कहलाता है न ? क्या कहे ? फोड़े पर सूर्य की किरणें डाले तो जिस ओर किरण झुके उस ओर पूरी मशीन घुमावे। छह लाख की मशीन। उस समय के छह लाख। आहाहा! (संवत्) १९९० का वर्ष। अभी तो मशीन की कीमत भी बढ़ गयी। (वह कहे) तुम्हारे न्याय के लिये काम आयेगी। सूर्य की किरणें लगाते थे तो उसका फोड़ा... घूमड़े को क्या कहा ? फोड़ा। फोड़ा मिट जाता था। बालक पर सूर्य किरण सीधे डालते थे। यहाँ कहते हैं कि सीधे किरण तेरे क्षायिकभाव आदि स्वभाव की पर्याय, वह किरण छोड़ दे उसमें। आहाहा! वहाँ सब देखा था। डॉक्टर बताने आया था। डॉक्टर स्थानकवासी था। हमारे प्रति तो सबको प्रेम था न। आहाहा!

कहते हैं कि उपशमभावरूपी जो सम्यग्दर्शन की किरण प्रगट हुई, वह उपशमभाव अपने द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! और उपशमचारित्र। ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशमचारित्र होता है। कषाय का उदय बिल्कुल नहीं रहे। ग्यारहवें गुणस्थान में उपशमचारित्र होता है। पूर्ण चारित्र की शान्ति। वह उपशमचारित्र भी त्रिकाल द्रव्य में नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! यह तुम्हारे सब जवाहरात में और हीरा में कहाँ है ? कोई अभी आया था कि हम शान्तिभाई के यहाँ काम करते हैं। कौन था ? कोई काम करता था न ? अपना व्यक्ति। तुम्हारा लड़का, नहीं ? आया था न ? परमात्मप्रकाश, वह कहता था कि मैं शान्तिभाई के

यहाँ काम करता हूँ। परमात्मप्रकाश पहले आया था। उसने कहा कि अभी मैं शान्तिभाई के यहाँ काम करता हूँ। शान्तिभाई बड़े गृहस्थ हैं। २५-३० लोग तो हीरा घिसने आते हैं। एक-एक व्यक्ति को पाँच सौ-पाँच सौ तो मिलते होंगे या अधिक मिलते होंगे, अपने को कुछ खबर नहीं। हम दुकान में थोड़ी देर गये, तब सब आये थे। २०-२५ लोग। एक-एक को महीने के पाँच सौ, ऐसे पच्चीस लोग थे। वह सब धूल है। उस पुद्गल का तो प्रभु! तुझमें अभाव है। अरे! पुद्गल का तो अभाव है, परन्तु यहाँ तो उपशमभाव का भी तुझमें अभाव है। आहाहा! तुझे किसे मानना है? नाथ! प्रभु! तू कौन है? आहाहा!

कहते हैं कि उपशमभाव भी उसमें नहीं। फिर क्षायिकभाव के दो भेद। क्षायिक समकित। है? क्षायिक समकित जो तीर्थंकरगोत्र बँधता है। श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे। उनके लड़के ने भले जेल में डाला था और जेल में डालने के बाद जेल तोड़ने आया। उसकी माँ के पास गया और मैंने ऐसा किया। अर..र! तूने क्या किया? बेटा! तेरा जन्म हुआ, तब मैंने तो फेंक दिया था। मेरे स्वप्न में आया कि यह लड़का श्रेणिक राजा का कलेजा खाता है; इसलिए तू जन्मा तब उकरड़ा... उकरड़ा को क्या कहते हैं? कूड़ा। वहाँ डाल दिया था। वहाँ कूकड़ा... कूकड़ा कहते हैं न? मुर्गा-मुर्गा। तो मुर्गे को, राजकुमार जन्म का पहला दिन, रानी ने डाल दिया। वह मुर्गा चोंच मारे और पीप निकले और चिल्लाहट मचाकर रोवे। अभी एक दिन का बालक था। श्रेणिक राजा.. चेलना के पास.. अरे! क्या हुआ? बालक को फेंक दिया। अरे..! क्यों? स्वप्न में ऐसा आया था कि तुम्हारा कलेजा खाता है। अर र र! ऐसा नहीं करना चाहिए। कहाँ डाला है? श्रेणिक वहाँ गये। आहाहा! उसे पीड़ा होती थी न? दो दिन का बालक था। अरे! तेरे पिताजी ने तो ऐसा किया। तूने यह क्या किया? आहाहा! यह बना है या नहीं? वहाँ गये। कुणिक वहाँ (जेल) में गया। हथियार लेकर तोड़ने गया परन्तु उसने (श्रेणिक राजा ने) ऐसा देखा और ख्याल आया कि यह मारने आया है। वह ज्ञान की भूल कोई अज्ञान नहीं है। समझ में आया? अन्दर में भेदज्ञान है, उसमें ख्याल आया कि यह मारने आया। मारने नहीं आया था... ख्याल में ऐसा आया तो वह ख्याल अज्ञान नहीं है। वह ज्ञान की—क्षयोपशम की भूल है, वह तो होती है। तथापि क्षायिक समकित में जरा भी अन्तर नहीं। आहाहा! जो क्षायिक मिला है, वह केवलज्ञान लेकर सिद्ध में भी वही क्षायिक समकित रहेगा। आहाहा! अभी नरक में है। आगामी चौबीसी में पहला तीर्थंकर होगा। आगामी चौबीसी में। पश्चात् मोक्ष हो जायेगा। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर माता के गर्भ

में आयेगा। फिर जन्म होगा, फिर दीक्षा लेंगे और तीर्थंकर होंगे। आहाहा! उनकी ऐसी भूल हुई। वह मारने आता है। मुझे जेल में डाला है। जेल में डाल दिया है तो मुझे मारने आता है। हीरा चूस लिया। अंगुली में बड़ा हीरा पहना हुआ था, बड़ा राजा था न? देह छूट गयी। हीरा चूस लिया, आपघात हुआ तो भी क्षायिक समकित में दोष नहीं। सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो कहा जाता है। आहाहा! क्षायिक समकित का दोष नहीं, यह चारित्र का दोष है। दूसरे गुण का दोष दूसरे गुण को नुकसान करे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! वह चारित्रदोष है। क्षायिक समकित को बिल्कुल दोष है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह क्षायिक समकित भी आत्मा में नहीं। है? क्षायिकभाव के दो भेद—एक क्षायिक समकित... वह आत्मा में नहीं, द्रव्य में नहीं। जहाँ दृष्टि लगाना है... आहाहा! और जिसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन होता है, उस चीज़ में तो क्षायिक समकित भी नहीं है अरे प्रभु! आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर चैतन्य हीरा। जैसे हीरा में बहुत पासा होते हैं, वैसे अनन्त गुण के पासा अन्दर भरे हैं। पूर्णानन्द प्रभु!

क्षायिक समकित है, क्षायिक का एक भेद, वह भी उसमें नहीं – वस्तु / द्रव्य में पर्याय नहीं। आहाहा! ऊपर तैरती है, सबेरे आया था। पर्याय, द्रव्य में ऊपर तैरती है। चाहे तो क्षायिकभाव हो तो भी वह पर्याय, द्रव्य के ऊपर तैरती है। आहाहा! द्रव्य में प्रवेश नहीं करती, प्रभु! तू इतना बड़ा है, तेरी इतनी महिमा है कि क्षायिक पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय भी तेरे अन्दर प्रवेश नहीं करती, ऊपर-ऊपर तैरती है। अरे! ऐसा परमात्मा का सत्! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने ऐसा दिव्यध्वनि द्वारा सभा में सुनाया है, वह ये कुन्दकुन्दाचार्य लेकर आये हैं। इस पुस्तक (नियमसार ग्रन्थ) के लिये तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। अन्तिम गाथा है। अन्तिम गाथा है न? १८७।

‘**णियभावणाणिमित्तं**’ अन्तिम १८७ गाथा। पृष्ठ ३७१। है? ‘**णियभावणाणिमित्तं**’.. गाथा। ‘**णियभावणाणिमित्तं**’ मेरी भावना के कारण। लोग समझे या न समझे, इस कारण नहीं। आहाहा! ‘**णियभावणाणिमित्तं**’ आहाहा! ‘**मए कदं**’ यह समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ में भी मैंने यह किया, ऐसा शब्द कहीं नहीं होगा। ‘**वोच्छामि**’ कहता हूँ परन्तु मेरे लिये किया है, ऐसा कहीं नहीं है। यह तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! छठे-सातवें गुणस्थान में भावलिंगी सन्त! एकाधभव करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष में

जानेवाले हैं। अभी वैमानिक में स्वर्ग में गये हैं। वहाँ निकलकर मनुष्य होकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे कहते हैं कि यह नियमसार मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! उस भावना में ऐसा कहते हैं। है न? '**णियभावणाणिमित्तं मए कदं**' मैंने किया। '**णियमसारणामसुदं णच्चा जिणोवदेसं**' जिन-का उपदेश बराबर समझकर मैंने यह कहा है परन्तु जिन के उपदेश को बराबर समझकर। है? '**णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्वापर दोष से रहित है। पहले कुछ कहा और फिर कुछ कहे, ऐसा विरोध यहाँ नहीं है। आहाहा!

क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र,... आहाहा! ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में यथाख्यात। यथाख्यात का अर्थ? यथा / प्रसिद्ध। जैसे स्वरूप की रमणता, जैसी चारित्र की शक्ति है, वैसी पर्याय में यथाख्यात - जैसा चारित्र, स्वभाव में है, वैसा पर्याय में प्रगट हो गया। आहाहा! यथाख्यात्। जैसा है, वैसी प्रसिद्धी पर्याय में चारित्र-अन्तर की अकषायभाव की रमणता पूरी हो गयी। यथाख्यातचारित्र, वह भी आत्मा में / द्रव्य में नहीं है। आहाहा! अरे रे! अभी तो यहाँ यह शरीर मेरा नहीं, यह कहने में पसीना उतरे। आहाहा! दया, दान का राग मेरा नहीं। अरे रे! वह किसका है? जड़ का है? प्रभु! सुन तो सही! वह तो विकार है। विकार की तो गन्ध भी अन्दर में नहीं है। परन्तु निर्विकारी पर्याय क्षायिकचारित्र और क्षायिकसम्यक्त्व की भी अन्दर गन्ध नहीं है। आहाहा! वह तो पंचमभाव आनन्द का नाथ प्रभु, अनन्त गुण का संग्रहालय। बड़ा गोदाम होता है न? गोदाम। हमने तो सब देखा है न।

माल लेने मुम्बई जाते थे, तो एक गोदाम देखा था, जिसमें केसर के डिब्बे, हजारों डिब्बे थे। बड़ा व्यापार था। (संवत्) १९६५-६६ में माल लेने जाते थे। केसर के डिब्बे। उस समय तो एक रुपया भार था। अभी महंगा हो गया है, ऐसा कहते हैं। हमारे व्यापार था, तब केसर के डिब्बे लाते थे। डिब्बे लेने गये थे। बहुत बड़ा गोदाम। केसर के डिब्बे भरे थे। इसी प्रकार यह भगवान... आहाहा! पूर्ण गुण का बड़ा गोदाम है। पूर्ण गुण का गोदाम है। आहाहा! तीन बोल, बहुत बार कहते हैं न? अनन्त गुण का गोदाम है। अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। अनन्त शक्ति का संग्रह का आलय-स्थान है और अनन्त स्वभाव का सागर है। तुम्हारा सागर है। आहाहा!

ऐसे भगवान में यथाख्यातचारित्र का अभाव है। अरे! केवलज्ञान का अभाव है। है? क्षायिकभाव का केवलज्ञान। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द सहजात्मस्वरूप। सहजस्वरूप पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. प्रभु में केवलज्ञान की पर्याय का भी अभाव है। क्योंकि वह पर्याय है, वह

द्रव्य के ऊपर तैरती है। केवलज्ञान का भी द्रव्य में प्रवेश नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी पुण्य के परिणाम दया, दान से धर्म होता है, व्यवहार करते-करते धर्म होता है, (ऐसा मानते हैं)। अरे! प्रभु! आत्मा को बहुत कलंक लगा देता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञान क्षायिकभाव और केवलदर्शन क्षायिकभाव **तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित...** निमित्त से कथन है। **दान,...** अपने पूर्ण स्वरूप का दान अपने को दिया। **लाभ,...** पूर्ण स्वरूप का लाभ हुआ। पूर्ण स्वरूप का भोग हुआ। पूर्ण स्वरूप का बारम्बार भोगना और पूर्ण वीर्य। क्षायिकभाव, वह दान; क्षायिकभाव, वह लाभ; क्षायिकभाव, वह भोग; क्षायिकभाव, वह उपभोग; और क्षायिकभाव, वह वीर्य। आहाहा! अनन्त चतुष्टय जो भगवान को प्रगट होता है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—इस पर्याय का भी त्रिकाली द्रव्य में अभाव है। यह तो लोगों को सुनने को भी नहीं मिलता। आहाहा! दुनिया के भाग्य हैं कि ऐसी चीज़ रह गयी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान समवसरण में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य तो आड़तिया होकर दुनिया को प्रसिद्ध करते हैं कि प्रभु ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा!

तेरी प्रभुता की महिमा में नाथ! केवलज्ञान का भी अभाव है, ऐसी तेरी महिमा है। तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! आहाहा! तू कहाँ फँस जाता है? आहाहा! थोड़ी लक्ष्मी मिले, इज्जत मिले, विषयभोग में अनुकूलता मिले, उसमें फँस जाता है, प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। जिसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन भी नहीं और ये चार **दान, लाभ,...** भी नहीं। अपने स्वरूप का पूर्ण दान अन्दर आ गया। पूर्ण स्वरूप का सम्प्रदान दान, पर्याय में पूर्ण स्वरूप का दान, अपना दान। पर के दान-फान की बात नहीं है। वह दान और पूर्ण स्वरूप का पर्याय में लाभ हुआ-क्षायिक लाभ। पूर्ण स्वरूप का **भोग,...** बारम्बार भोगना। एक बार भोगने को भोग और बारम्बार भोगना, वह उपभोग, वह क्षायिकभाव प्रगट हुआ। और **वीर्य,...** पुरुषार्थ क्षायिकभाव प्रगट हुआ। वह क्षायिकभाव प्रगट हुआ परन्तु वह क्षायिकभाव आत्मा / द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसी दृष्टि कराने को, सहजात्मस्वरूप प्रभु की दृष्टि कराने को, सम्यग्दर्शन कराने को यह बात की है और उस सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है। यह अपवास करे, लाख-करोड़ करे और अरबों के दान करे और लाखों मन्दिर बनावे, उसमें संसार का अन्त नहीं आता। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)